Chap-7

:: सप्तम् अध्याय ::

:: उपसंहार ::

:: सप्तम् अध्याय ::

: उपसंहार :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में "प्राक्कथन" के प्रारंभ में समकालीन कवि विनोदकुमार शुक्ल की एक काव्य-पंक्ति को उदृदत करते हुए कहा है कि -- "घड़ी देखना समय देखना नहीं होता।" समय या टाइम जानने के लिए घड़ी का प्रयोग तो सभी करते हैं, परंतु यहां समय को देखने का तात्पर्य अपनी समकालीनता को समग्रता में देखना, विश्लेषित करना और ग्रहण करना है । और ऐसा सभी नहीं कर पाते। जिनके पास दृष्टि या विजन होते हैं, वे ही उसे समग्रता से देख पाते हैं और उसे फिर अपनी कला के माध्यम से उसे अभिव्यंजित भी करते हैं । कुछ काव्य-पंक्तियां स्मृतिपटल पर उभर रही हैं – " आंखो के होने में और दृष्टि के होने में बड़ा अंतर है.....मनुष्य के पास नज़र होती है, ऋषि के पास दृष्टि (नज़र मनुष्य को पहचानती है) दृष्टि युग को । (सूखे सेमल के वृन्तों पर, पृ. 24) प्रेमचंद की मृत्यु-तिथि पर निरालाजी ने जो कहा था कि दृष्टि यदि किसीके पास है, तो इसीके पास थीं । यहां निरालाजी का अभिप्राय इसी दृष्टि से था। वह दृष्टि जो किसी लेखक, कवि या कलाकार के पास होती है ।

यह मैं इसलिए कह रही हूं कि मेरे शोध-प्रबंध का सीधा सरोकार साठ के बाद के तीन महत्वपूर्ण बहुचर्चित उपन्यासों से रहा है – "राग दरबारी", "मुझे चांद चाहिए" और "काशी का अस्सी" – जो क्रमशः सन् 1968, 1993 और 2002 में प्रकाशित हुए हैं। इनमें "राग दरबारी" को साठोत्तरी कह सकते है और शेष दो तो समकालीन हैं ही। यद्यपि तीनों के विषय-वस्तु का सरोकार तो स्वातंत्र्यात्तर काल से ही है। ये तीनों उपन्यास भिन्न कारणों से पाठकों व समालोचकों के दृष्टि केन्द्र में रहे हैं। पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह भी निरूपित हो चुका है कि उपन्यास में लेखक की विचारधारा या जीवन-दर्शन का विशेष महत्व है।

बिना इसके उपन्यास दो कौड़ी का नहीं रहता, क्योंकि उपन्यास केवल कथा-मात्र नहीं है, वह इससे कुछ ऊपर की वस्तु है और अधिकांश आलोचक इस मत से सहमत है कि उसमें यह "ऊपर की वस्तु" जीवनदर्शन के कारण ही आयी है ।

आलोचकों ने उपन्यास के छः तत्व निर्धारित किए है -- कथावस्तु, पात्र-सृष्टि, कथोपकथन, वातावरण या परिवेश, विचार और उददेश्य या जीवनदर्शन और भाषाशैली। किन्तु ये छहों तत्व परस्पर अंतर्ग्रथित है, परस्परावलंबी है। इन सबका प्राण-तत्व है यथार्थधर्मिता और ये छहों तत्व इस यथार्थधर्मिता को उकेरने में सहायक होते है। हमारे शोध-प्रबंध के केन्द्र में है इन तीनों उपन्यासों की भाषिक-संरचना की यथार्थ पड़ताल। "भाषिक-सरंचना" का सम्बन्ध सामान्यत या "भाषाशैली" से है, परंतु जैसा कि ऊपर कहा गया है, ये सभी तत्व अन्तर्ग्रथित है। अतः इनको ऐक दूसरे से अलगाना मुश्किल है। यहां हमारा लक्ष्य "भाषाशैली" के अनेकानेक पक्षों पर विचार-विश्लेषण का है, अतः इसके लिए हमने "भाषिक-संरचना" शब्द का प्रयोग किया है। तीन ही उपन्यासों को लेने के पीछे हमारा लक्ष्य शोध के "माइक्रो-रिसर्च" (सूक्ष्मतम अनुसंधान) की ओर रहा है। अतः भाषा की इक-इक इकाई को लेकर विस्तृत ऐवं सोदाहरण चर्चाकी यहां काफी गुंजायश रही है। इस तरह के अध्ययन का एक लाभ यह है कि एक ही उपन्यास को कई-कई बार उलटा-पलटा जाता है, अतः उपन्यास कम होते हुए भी उसमें काफी समय निकल जाता है। मुझे और भी समय लगा, क्योंकि घर-गृहस्थी और बुटिक संभालने के बाद समय ही कितना रह जाता था।

शोध-प्रबंध के उपयुक्त समाकलन हेतु हमने छः अध्यायों में उसे विभक्त किया है -- (1) प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश, (2) द्वितीय अध्याय : आलोच्य उपन्यासों की कथ्य-चेतना, (3) तृतीय अध्याय : "राग दरबारी" उपन्यास की भाषिक-संरचना, (4) चतुर्थ अध्याय : "मुझे चांद चाहिए"

उपन्यास की भाषिक संरचना, (5) पंचम् अध्याय : "काशी का अस्सी" उपन्यास की भाषिक-संरचना और (6) षष्ठ अध्याय : आलोच्य उपन्यासों में नवीन भाषाभिव्यंजना। इसके उपरान्त सप्तम् अध्याय उपसंहार का रखा है।

"विषय-प्रवेश" में हमने शोघ-प्रबंध से सम्बद्ध कुछेक आयामों पर विचार किया है। हमारे आलोच्य उपन्यासों का रचना-काल, बल्कि प्रकाशन-काल सन् 1968 से लेकर सन् 2002 तक में परिव्याप्त है, अत: प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में हमने सन् 2010 तक के औपन्यासिक विकास को रेखांकित करना उपयुक्त समझा है। हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचंद के योगदान को नकारा नहीं जा सकता, अत: उनको केन्द्र में रखते हुए सन् 2010 तक औपन्यासिक-विकास को चिहिनत किया है । शोध-प्रबंध का सम्बन्ध "भाषिक-संरचना" से है, लिहाजा यहां भाषा की परिभाषा पर भी विचार कर लिया गया है । भाषा के दो रूप या शैलियां उपलब्ध होती हैं – पद्य और गद्य । यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि उपन्यास गद्य की विधा है और आधुनिक काल में गद्य के विकास के उपरांत ही उपन्यास का आविर्भाव हुआ है । पश्चिम में भी गद्य जब वर्णन, विवेचन, विवरण, विश्लेषण इत्यादि के लिए सक्षम हो गया तब उपन्यास का जन्म हुआ था । अत: यहां पर बहुत संक्षेप में आधुनिक काल में हिन्दी गद्य का जो विकास हुआ है उस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है । इसके उपरान्त उपन्यास की भाषा पर सैद्धान्तिक, लेखकीय, पात्र-सृष्टि, परिवेश, औपन्यासिक विधा और शैली आदि की दृष्टि से विचार किया गया है । उपन्यास यथार्थ की विधा है, अत: उपन्यास और यथार्थ और भाषा जैसे अति आवश्यक मुददों पर भी विचार हुआ है । यहां "भाषिक-संरचना" से हमारा क्या तात्पर्य है उसे भी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है । अध्याय के अंत में अध्यायगत निष्कर्ष दिए गए हैं । अध्याय के प्रारंभ में प्रास्ताविक और अंत में निष्कर्ष, इस विधि का पालन समग्र शोध-प्रबंध में देखा जा सकता है । "संदर्भानुक्रम" अध्याय के अंत में दिए गए हैं ।

दूसरे अध्याय में आलोच्य तीनों उपन्यासों की कथ्य-चेतना को स्पष्ट करने का उपक्रम है, क्योंकि "भाषिक-संरचना" का सीधा सम्बन्ध कथ्य-चेतना से है । उपन्यास की रचना में लेखक के अभिप्राय और उददेश्य को जानना-समझना अति आवश्यक है, क्योंकि भाषा का रूप भी उसीके अनुरूप ढलेगा । अतः तीनों उपन्यासों की कथ्य-चेतना को स्पष्ट करने के लिए, उसके पूर्व दो सोपानों से गुजरना पड़ा है -- कथावस्तु और पात्र-सृष्टि । कथ्य-चेतना की दृष्टिसे "राग दरबारी" हमें राजनीतिक, कुछ हद तक आंचलिक और व्यंग्यात्मक लगा है । स्वाधीनता के बाद हमारे यहां का ग्रामीण-जीवन कांइयापन और हरामीपन में पगा हुआ-सा मिलता है । लेखक ने प्रत्येक चरित्र, प्रत्येक प्रसंग, प्रत्येक वाक्य व्यंग्य के रंग में सरोबार होकर उकेरा है । अतः स्वाभाविक रूप से उसकी भाषा में भी वही व्यंगलता उपलब्ध होगी, जिसे हम परवर्ती तृतीय अध्याय में विश्लेषित करेंगे ।

"मुझे चांद चाहिए" की कथ्य-चेतना थोड़ी अलग है । उसका रूपबंध नाटकीय है । उसमें नाटय-जीवन और फिल्म-जीवन के अनुभवों का यथार्थ आकलन है । इस उपन्यास का महत्व उसकी संदर्भ-संपन्नता के कारण बढ़ जाता है । कोई चाहे तो इसे पढ़कर पठनीय पुस्तकों, नाटकों और दर्शनीय फिल्मों की एक सूची तैयार कर सकता है । उसमें लेखक ने एक लौहसंकल्पी पात्र के रूप में वर्षा वसिष्ठ का निर्माण किया है । व्यक्ति का दृढ़ संकल्प उसे कहां से कहां तक ले जाता है । हालांकि बेवजह कुछ भी नहीं हो ता । "यूं ही, यूं ही मिल जाता है कोई / और बेसिर-पैर की जिन्दगी बदल जाती है सिरे से।" (राजकुमार कुम्भज की काव्य-पंक्तियां) वर्षा वसिष्ठ के जीवन में दिव्या कात्याल का आना कुछ ऐसा ही है । बेमतलब-बे-सिर पैर की जिन्दगी को मानो एक मतलब मिल जाता है। अचानक उसमें असंभव के लिए आकांक्षा जागती है । उसे प्रतीत होने लगता है कि यह संसार काफी असहनीय है, इसलिए उसे चन्द्रमा या खुशी चाहिए - कुछ ऐसा, जो वस्तुतः पागलपनसा जान

पड़े । हां, आदरणीय पंकज बिष्टजी, वर्षा को चांद ही चाहिए, उससे कमतर बिल्कुल नहीं । अतः वह असंभव का संधान करने का ठान लेती है । देखो, तर्क कहां तक ले जाता है – शक्ति अपनी सर्वोच्च सीमा तक, इच्छाशक्ति अपने अनंत छोर तक । (संदर्भ – कालिगुला) कोई चाहे तो इसे नारी-अस्मिता का उपन्यास भी कह सकता है । अतः यहां भाषिक-संरचना उसके परिवेश के अनुरूप ही होगी ।

"काशी का अस्सी" पुनः राजनीतिक, व्यंग्यात्मक-हास्यरस-प्रधान उपन्यास है । उसे आंचलिक भी कह सकते हैं । इस दृष्टि से "राग दरबारी" के बाद होना चाहिए । पर मैंने अपने प्रबंध में काल-क्रमिकता को प्राधान्य दिया है। अतः प्रस्तुत उपन्यास को अंत में रखा है। इसमें काशी के "अस्सी" लोकेल को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया गया है । इसे संस्मरणात्मक उपन्यास भी कह सकते हैं । इसमें निरूपित कुछ पात्र, जैसे डॉ. गया सिंह, तन्नी गुरू, उनके सुपुत्र कन्नी गुरु, प्रोफेसर काशीनाथ सिंह, प्रो. चौथेराम यादव, ब्रहमदत्त चौबे आदि-आदि – अब भी जीवित है। उनसे मिला जा सकता है, उनसे भेंट की जा सकती है । तो, यहां काशी का अस्सी है, अपनी बोली-बानी और भाषाई-जार्गन के साथ। भले यहां व्यंग्य है, हास्य है, गाली-गलोज है, पर उसकी कथ्य-चेतना हमें विषाद की ओर ले जाती है, एक गहरा विषाद । खनकती हंसी के खो जाने का विषाद। गंगा-जमनी दोआबा संस्कृति के मिट जाने का अवसाद। यह एक गल्पेतर गल्प है। यह उपन्यास अपनी कहन, कथा और चलन तीनों में नयेपन का सूत्रपात करता है। बच्चनसिंह ने इसे उपन्यास के लोकतंत्र की उपमा दी थी । वस्तुतः यही सच्चा जनतंत्र है कि किसी ठस विधाई ढांचे की कैद को तोड़कर रचना प्रवाहित हो और जीवन की शर्त पर। जिन्हें इस पुस्तक में जीवन का संघर्ष नहीं दिखाई दिया वे शायद हंसी और व्यंग्य के ऊपरी खोल पर ही अटके रह गए। (बनास-2, शिशिर-2009) वस्तुतः इसमें

कई कहानियां है, कइयों की कहानियां है, पर इनको एक सूत्र में पिरोया है अस्सी के मिजाज ने।

तृतीय, चतुर्थ और पंचम अध्याय में क्रमशः इन तीन उपन्यासों — "राग दरबारी", "मुझे चांद चाहिए" और "काशी का अस्सी" – की "भाषिक-संरचना" की पड़ताल एवं विश्लेषण का उपक्रम है । यहां प्रथमतः इन तीनों उपन्यासों की भाषा को चरित्र-सृष्टि, वातावरण परिवेश या देशकाल, कथोपकथन आदि के निकष पर रखा गया है । तदुपरांत वर्ण-विचार से लेकर प्रोक्ति-विचार तक की भाषाई इकाइयों पर सोदाहरण चर्चा की गई है । "शब्द-विचार" के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की शब्दावलियों — जैसे, ग्रामीण शब्दावली, व्यंग्यात्मक शब्दावली, ध्वन्यात्मक शब्दावली, आवृत्तिमूलक शब्दावली, गालीवाचक शब्दावली, विभिन्न भाषाओं की शब्दावलियां, शब्द-सहचयन, मुहावरों का प्रयोग इत्यादि की सोदाहरण चर्चा की गई है । "वाक्य-विचार के अंतर्गत वाक्य की परिभाषा के उपरांत विभिन्न प्रकार के वाक्यों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है । कहावतों की चर्चा यहां हुई है । "प्रोक्ति-विचार" में प्रोक्ति की परिभाषा के उपरांत विभिन्न प्रकार की प्रोक्तियों की सोदाहरण चर्चा करने का उपक्रम रहा है । तीनों अध्यायों में भाषाई इकाइयों के उपरान्त उन-उन उपन्यासों की भाषाशैली पर भी विचार किया गया है ।

उपर्युक्त चर्चा-विश्लेषण में उपन्यास के रुपबंध के अनुसार यत्किंचित परिवर्तन भी है । "शब्द-विचार" में विभिन्न भाषाओं की शब्दावलियां तो आलोच्य तीनों उपन्यासों में उपलब्ध हुई है । परंतु मुझे चांद चाहिए" उपन्यास के परिवेश और रूपबंध को ध्यान में रखते हुए उसमें नाटकीय शब्दावली, फिल्मी शब्दावली, निम्न-मध्यमवर्ग, उच्च-मध्यमवर्ग, उच्चवर्ग आदि से सम्बन्धित तथा दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरीय परिवेशीय शब्दावली का अनुसंधान भी करने का प्रयत्न किया है । प्रस्तुत उपन्यास में देशी-विदेशी शराबों के नाम तथा विदेशी फिल्म-कलाकारों तथा बहुचर्चित विदेशी फिल्मों

के नाम इत्यादि का भी संधान साधने का प्रयत्न किया है । गालीवाचक शब्द तीनों उपन्यासों में मिलते है, किन्तु यदि अनुपात की दृष्टि से क्रम रखना हो तो यह क्रम हो सकता है -- "काशी का अस्सी", "राग दरबारी" और "मुझे चांद चाहिए" । "मुझे चांद चाहिए" में सबसे कम गालियों का प्रयोग है और जो गालियां हैं वे भी अधिकांशत: अंग्रेजी ।

"शब्द-सहचयन" (Word-Association) और मुहावरों की चर्चा भी "शब्द-विचार" के अंतर्गत हुई है, क्योंकि "शब्द-सहचयन" में लेखक की विचार-यात्रा या प्रसंग-निरुपण यात्रा के मूल में कोई शब्द होता है और मुहावरे भी पूरा वाक्य न होकर शब्द-समूह से होते हैं ।

"वाक्य-विचार" में उपन्यासों के रूपबंध के अनुरूप यत्किंचित् परिवर्तन देखे जा सकते है । "शब्द", "वाक्य" तथा "प्राक्ति" आदि की परिभाषा तो केवल तृतीय अध्याय में दी गई है । चतुर्थ और पंचम अध्याय में पुनरूक्ति दोष से बचने के लिए उनका पुनरावर्तन नहीं किया गया है । "मुझे चांद चाहिए" में अन्य प्रकार के वाक्यों के साथ नाटकीय भंगिमायुक्त वाक्य तथा अंग्रेजी के वाक्य भी दिए गए है । कहावतों की चर्चा तो तीनों अध्यायों में "वाक्य-विचार" के अंतर्गत हुई है, क्योंकि कहावत अपने आप में एक वाक्य होता है । "काशी का अस्सी" में अन्य प्रकार के वाक्यों के उपरांत सूत्रात्मक वाक्य, राजनीतिक वाक्य, राजनीतिक पक्षों के नारों के रूप में आये वाक्य, अंग्रेजी तथा संस्कृत के भी वाक्य दिए गए है ।

"प्रोक्ति-विचार" में भी औपन्यासिक रूपबंध तथा परिवेशगत भिन्नता के कारण यत्किंचित परिवर्तन पाया जा सकता है । "मुझे चांद चाहिए" में अन्य प्रकार की उक्तियों के उपरान्त नाटयोक्तियां और फिल्मोक्तियां भी दी गई है; तो काशी का अस्सी" में व्यग्योक्तियों और हास्योक्त्यिों के अलावा राजनीतिक उक्तियों और विषादोक्तियों को भी रेखांकित किया गया है । इनके अतिरिक्त

यथावश्यक तकिया-कलाम, प्रसंग-सहचयन, सवाटबयानी इत्यादि का यथेष्ट विश्लेषण भी प्रस्तुत हुआ है ।

षष्ठ अध्याय आलोच्य उपन्यासों में प्रयुक्त नवीन भाषाभिव्यंजना से सम्बद्ध है । अत: प्रास्ताविक में नवीन भाषाभिव्यंजना के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए तीनों उपन्यासों में प्रयुक्त नवीन भाषायी आयामों को निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत विश्लेषित किया है – नवीन अभिव्यंजना : नया शिल्प, नवीन उपमानों का प्रयोग, नवीन रूपकों का प्रयोग, विशेषण-विपर्यय, असाधारण या विशिष्ट क्रियारूपो का प्रयोग, नये मुहावरे, नयी कहावतें, तकिया-कलाम, मुद्रा अलंकार आदि-आदि ।

अपने इस शोध-प्रबंध के लेखन में मैने यथासंभव शोध-प्रविधि का अनुसरण किया है । प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में "प्रास्ताविक" और अंत में अध्यायगत निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं । अध्याय के अंत में "सन्दर्भानुक्रम" के अंतर्गत पुस्तक या ग्रंथ-विशेष का नाम, पत्रिका है तो उसका क्रमांक वा वर्ष-महीना, लेखक का नाम और पृष्ठ-संख्या अंकित की है । यहां तक कि आलोच्य उपन्यासों में शब्द या वाक्य दिए गए हैं तो उनकी भी पृ.सं. अंकित की गई है । ग्रन्थ या पुस्तक के लेखक के नाम में प्रथमत: नाम दिया गया है, परंतु एक ही पृष्ठ पर यदि पुस्तक या ग्रन्थ का पुनरावर्तन हुआ है, तो केवल ग्रन्थ या पुस्तक का उल्लेख और पृ.सं. दिए गए है । उपजीव्य ग्रन्थ तीन है – राग दरबारी, मुझे चांद चाहिए और काशी का अस्सी – जिनके लेखक हैं क्रमश: श्रीलाल शुक्ल, डा. सुरेन्द्र वर्मा और डा. काशीनाथ सिंह । अत: यह स्वभाविक ही है कि इन ग्रन्थों के उल्लेख कई-कई बार होंगे । फलत: एक पृष्ठ पर एक ही बार उनका उल्लेख किया गया है । शोध-प्रबंध के अंत में (प्रस्तुत अध्याय "उपसंहार" के बाद) ग्रन्थानुक्रमणिका (Bibliography) को पांच परिशिष्टों में प्रस्तुत किया गया है – उपजीव्य ग्रन्थों की सूची, सहायक-ग्रन्थों (हिन्दी) सूची, सहायक-ग्रन्थ (अंगेजी) की सूची, कोश-ग्रन्थ इत्यादि

की सूची और पत्र-पत्रिकाओं की सूची । इन सबको यथानियम अकारादिक्रम में रखा गया है । यथा-संभव संस्करण भी दिए गए है ।

यद्यपि प्रत्येक अध्याय के अंत में अध्यायगत निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं तथापि शोध-प्रबंध का यह तकाजा है कि समग्र शोध-प्रबंध के प्रमुख निष्कर्ष दिए जाएं । अत: बहुत संक्षेप में मै अपने निष्कर्ष प्रस्तुत कर रही हूं –

(1) उपन्यास यथार्थ की विद्या है । अत: उसमें यथार्थधर्मिता का निर्वाह या उसकी निर्मिति उसके सभी तत्वों के द्वारा होती है । हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचंद से हासिल हुआ है, अत: औपन्यासिक विकास को, उसके विभिन्न सोपानों को निरूपित करते समय प्रेमचंद के नाम को केन्द्र में रखना स्वाभाविक ही होगा और प्राय: सभी औपन्यासिक आलोचकों ने इसका निर्वाह किया है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हमने भाग्यवती (1868) से लेकर सन 2010 तक के प्रमुख उपन्यासों का उल्लेख किया है ।

(2) उपन्यास की भाषा गद्य-भाषा है । वर्णन, विवरण और विश्लेषण इत्यादि में लेखकीय भाषा या मानक भाषा का प्रयोग होता है, अन्यत्र उसमें बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता है, क्योंकि उपन्यास मानव-जीवन का गद्य कहा जाता है । उपन्यास का रूपबंध भी उसकी भाषा को प्रभावित करता है ।

(3) "भाषिक-संरचना" को समझने के लिए उपन्यास की कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि और उसकी कथ्य-चेतना को आत्मसात करना आवश्यक होता है ।

(4) "राग-दरबारी" व्यंग्यात्मक उपन्यासों का प्रतिमान माना जाता है । लेखक ने उसे "अनांचलिक" घोषित किया है, पर उसकी प्रकृति आंचलिक-सी ही लगती है । उपन्यास के केन्द्र में

"शिवपालगंज" है, और है वहां के लोगों का हरामीपन और कांइयांपन जिसे गंजहापन भी कहा जा सकता है । व्यंग्य उपन्यास है । स्वाधीनता के बाद भारतीय ग्रामीण जीवन की छबि "अहा ग्राम्य-जीवन भी क्या है ।" वाली नहीं रही है । राजनीति की काली-गंदी छाया ने सबको लील लिया है । लेखक ने व्यंग्य, हास्य और मखौल का सहारा लिया है, पर उसकी मंशा में यह वृत्ति नहीं है । स्वाधीनता के बाद आये ग्रामीण-जीवन के नकारात्मक बदलाव के कारण वह दुःखी और व्यथित है । उसकी कथ्य-चेतना यही बताती है ।

(5) "मुझे चांद चाहिए" एक नाटकीय उपन्यास है । उसकी पृष्ठभूमि कस्बाई और महानगरीय है, कस्बाई कम महानगरीय अधिक । दिल्ली महानगर और उसका नाट्य-जगत तथा चित्रनगरी मुंबई उसके केन्द्र में है। यहां दिल्ली का समग्र जीवन नहीं है, और न ही मुंबई का समग्र जीवन। यहां उन लोगों का जीवन है जो नाटक, साहित्य, कला, फिल्म आदि से सम्बद्ध है । यह नायिका-प्रधान उपन्यास है। इसे नारी-विमर्श और नारी-अस्मिता का उपन्यास कहा जा सकता है । शाहजहांपुर जैसे कस्बाई वातावरण में जहां लड़की को ऐक बोझ, एक अभिशाप माना जाता है, मराठी शब्द का प्रयोग करें तो जिसे "नकुशा" (अनवोन्टेड) समझा जाता है; वर्षा वसिष्ठ वहां से उठती है और एन.एस.डी. की एक प्रतिभा-संपन्न अभिनेत्री बनते हुए बोलीवुड से होलीवुड तक की संघर्ष-यात्रा अपने दृढ़ मनोबल के सहारे तय करती है। कोई गुरू, सच्चा अध्यापक, अपने छात्र को कहां से कहां पहुंचा सकता है और कोई योग्य छात्र सही

मार्गदर्शन मिलने पर किन ऊंचाइयों को सर कर सकता है, यह इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है।

(6) "काशी का अस्सी" एक अलग मिजाज का लोकतांत्रिक उपन्यास है । काशी या बनारस के "अस्सी" लोकेल, वहां के लोग, पप्पू की चाय की दुकान, वहां पर होनेवाली दुनियाभर की चर्चाएं, गंडऊ-गदर, दिव्य-निबटान, बहरी अलंग, बनारसी रंग में रंगे और पके हुए लोग, उनकी बोली-बानी, गाली-गलौज इन सबको यहां लेखक ने अपनी भाषाई-क्षमता से उकेरा है । उपन्यास के बाह्य कलेवर में गाली-गलौज होते हुए भी, उसके केन्द्र में एक दर्द, पीड़ा, व्यथा और विषाद है । जहां "राग दरबारी" के लेखक को "गंजहापन" से नफ़रत है, वहां "अस्सी" के लेखक को "अस्सीपन" के समाप्त होनेका बेइन्तिहा दु:ख है, जो अंतत: घने विषाद में गहराया है ।

(7) "राग दरबारी" उपन्यास का रूपबंध व्यंग्यात्मक प्रकार का है । अत: उसकी भाषिक-संरचना के पोर-पोर में, वर्ण-वक्रता से लेकर प्रबंध वक्रता तक में, व्यंग्यलता है । "छंगामल" में "छं" जहां वर्ण-वक्रता का उदाहरण हो; वहां वैद्यजी, रंगनाथ, सनीचर, रूप्पनबाबू, बद्री पहलवान आदि पात्रों का "गंजहापन" समग्र "राग दरबारी" उपन्यास की "प्रबंध-वक्रता को रूपायित करते हैं । उसमें लेखक ने अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत अवधी आदि कई भाषाओं के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । उपन्यास का प्रत्येक शब्द, वाक्य, कहावत, मुहावरा, प्रोक्ति व्यंग्य में सरोबार है । उसकी "भाषिक-संरचना" इसी व्यंग्यलता को रूपायित करती है ।

(8) "मुझे चांद चाहिए" उपन्यास "राग दरबारी" और "काशी का अस्सी" से बिल्कुल अलग छोर पर है । उसे हम नाटकीय और कलात्मक प्रकार का उपन्यास (नोवेल ओफ आर्ट) कह सकते हैं। इसकी भाषिक-संरचना अत्यन्त समृद्ध व संपन्न है । इसे हम "संदर्भ-संपन्नता" का उपन्यास भी कह सकते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी के अतिरिक्त उसमें संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दो का सार्थक प्रयोग हुआ है । इसमें कई संस्कृत नाटकों के उल्लेख हैं, कहीं-कहीं तो उसके संवाद भी है, अतः स्वाभाविक रूप से ऐसे स्थलों पर भाषा संस्कृतनिष्ठ हो गई है । संस्कृत के बाद उसमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप से मिलता है । अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से यदि इन तीन उपन्यासों को क्रमांकित करना हो तो क्रम यह हो सकता है –" मुझे चांद चाहिए", "राग दरबारी" और "काशी का अस्सी" । किन्तु इनका प्रयोग आतंकित करने या बहुज्ञता संमोह के कारण नहीं हुआ है । यह रचना, उपन्यास, की अपनी मांग के तहत आए हैं। चरित्र-सृष्टि, परिवेश-निर्माण, कथोपकथन आदि की सृष्टि में लेखक का भाषा-कर्म श्लाघनीय कहा जा सकता है और उसकी भाषाशैली में प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, व्यंग्यात्मकता, प्रत्युत्पन्नमति जैसे भाषाई-गुण उपलब्ध होते हैं ।

(9) "काशी का अस्सी" एक अलग ही मिजाज का उपन्यास है । यह उपन्यास अपनी कहन, कथा और चलन तीनों में नयेपन का सूत्रपात करता है । बकौल डा. बच्चनसिंह के इसे लोकतांत्रिक मिजाज का उपन्यास कहा जा सकता है । उपन्यास के पात्र हमारे समाज के लोगों जैसे होते हैं, पर होते हैं काल्पनिक । जबकि यहां ऐसे पात्र हैं जो जीवित है, जिनको मिला जा सकता

है, जिनसे भेंट हो सकती है और "अस्सी" को पढ़ने वाले, उसे सही मानों में समझने वाले जाने कहां-कहां से आकर उन पात्रों को मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । सुना है, उस पर कोई फिल्म भी बन रही है, जो शायद सन् 2012 में प्रदर्शित हो सकती है । जैसे बकौल असगर वज़ाहत के जिसने लाहौर को नहीं देखा उसका इस दुनिया में आना व्यर्थ है, ठीक उसी तरह जिसने "अस्सी" नहीं देखा, उसका भी इस दुनिया में आना बेकार है । "जो मजा बनारस में, न पेरिस में, न फारस में ।" (काशी का अस्सी, पृ. 12) तो बनारस अपने पूरे रंग में यहां उपस्थित है, अपनी बोली-बानी, गाली-गलौज के साथ । पर बावजूद इन सबके है यह विषाद और गहरी पीड़ा का उपन्यास । यहां यह उपन्यास बकौल लेखक के पूरे खिलान पर है । इसमें लेखक की भाषाशैली अत्यंत सहज और स्वाभाविक है । उसमें संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, अवधी, भोजपूरी आदि भाषाओं और बोलियों के शब्द अपने सहज स्वाभाविक रूप में प्रकट भए हैं (यहां के तमाम-तमाम गुरूओं की भांति) । यहां कृत्रिम कुछ भी नहीं है । इसके वाक्यों, शब्दों, सूत्रों, नारों, कहावतों और मुहावरों में एक खिलंडरापन है । उपन्यास की भाषिक-संरचना उसके व्यंग्यात्मक हास्यमूलक रूपबंध के अनुरूप ही है । उसमें कुछ राजनीतिक स्थितियों और व्यक्तियों का इतना मखौल उड़ाया गया है कि व्यक्ति तिलमिला उठे । मुहावरे की भाषा का इस्तेमाल करें तो उसे मिरची लग जाय। जहां "राग दरबारी" के श्रीलाल शुक्ल "शिवपालगबअ" के "गंजहापन" को घृणा की दृष्टि से देखते है, बरअक्स उसके इस उपन्यास के लेखक काशीनाथ सिंह की चिन्ता दूसरी है । उनकी चिन्ता इस

"अस्सीपन" के समाप्त होने की चिन्ता है, उनकी चिन्ता है कि यह गंगा-जमुनी दोआबा संस्कृति के समाप्त होने की । अपनी जिस खनखनाती हंसी के लिए बनारस, और उसका अस्सी भदैनी विश्वविख्यात है, उसके विलुप्त हो जाने के विषाद की कथा है यह उपन्यास । भाषिक-संरचना की दृष्टि से इसे भाषायी उपन्यास भी कह सकते है ।

(10) हमारें तीनों आलोच्य उपन्यास नवीन भाषाभिव्यंजना की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्व एवं संपन्न है । तीनों उपन्यासों में विपुल परिमाण में नवीन उपमान, रुपक, नवीन क्रियारुप, नवीन विशेषण या विशेषण-विपर्यय, नवीन कहावतें, नवीन मुहावरे आदि उपलब्ध होते हैं । संस्कृत में कहा गया है – "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" – ये तीनों उपन्यास इस कसौटी पर भी खरे उतरते हैं।

यदि यह शोध-प्रबंध हिन्दी के भविष्यत् अनुसंधित्सुओं को यत्किंचित भी लाभान्वित कर सका तो मैं अपने इस सारस्वत श्रम को सार्थक समझूंगी । उपन्यास क्षेत्र में शोध कई-कई उपन्यासों को लेकर, किसी एक रूपबंध के उपन्यासों को लेकर या किसी एक लेखक के उपन्यासों को लेकर होते रहे है, परंतु अणुवीक्षक-शोध (Micro-research) की दृष्टि से किसी एक कृति या रचना की समग्र शैल्य-परीक्षा भी हो सकती है । इनमें से प्रत्येक उपन्यास पर कई-कई दृष्टियों से शोध-कार्य हो सकता है । शैली-तात्विक दृष्टि से, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, समाजशास्त्रीय दृष्टि से या निकटवर्ती इतिहास की दृष्टि से भी इन पर कार्य हो सकता है ।

मेरे आलोच्य उपन्यासों में "राग दरबारी" तथा "काशी का अस्सी" एक हद तक व्यंग्यात्मक उपन्यास हैं । "मुझे चांद चाहिए" कुछ अलग प्रकार का है, जिसे पूर्ववर्ती पृष्ठो में भी निर्दिष्ट किया जा चुका है । ऐसा मैंने साभिप्राय किया है । "भाषिक-संरचना" की दृष्टि से इसमें क्या नयापन हो सकता है, किन नवीन मुददों की पड़ताल हो सकती है और अंतत: यह कि सभी उपन्यासों का आकलन एक दृष्टि से नहीं हो सकता उपन्यास की परीक्षा उसके "उपन्यासत्व" को लेकर ही होनी चाहिए । मनुष्य और उसकी बुद्धि-मेधा अपूर्ण होते हैं, मैं भी हूं, अत: अपनी क्षतियों एवं त्रुटियों के लिए विद्वत्जनों के सम्मुख क्षमाप्राथी हूं ।

अंत में राजकुमार कुम्भज की निम्नलिखित कविता-पंक्तियों के साथ विरमती हूं -

"कायम हो शांति, इसलिए चेतावनी दे दी गई है
कि सपने देखना बंद किया जाए, जो भी देखेगा
सपना, मारा जाएगा ।
तभी देखा गया कि चिड़ियों ने देखे सपने
और वे जिन्दा हैं इस पृथ्वी पर अभी भी ।
तभी देखा गया कि तितलियों ने देखे सपने
और वे जिन्दा है इस पृथ्वी पर अभी भी । ।
तभी देखा गया कि नदियों ने देखे सपने
और वे जिन्दा है इस पृथ्वी पर अभी भी
(तो) वैचारिक-कुपोषण का शिकार है वह चेतावनी । । ।

======= xxxxx =======